BPSC-104: भारत में राजनीतिक प्रक्रिया

(ट्यूटर द्वारा मूल्यांकित सत्रीय कार्य)

सत्रीय कार्य कोड: BPSC-104/ASST/TMA/2026-27

अंक: 100

सत्रीय कार्य – I

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 500 शब्दों में दीजिए।
(2 × 20 = 40 अंक)

1 भारत में राजनीतिक दलों और दलीय व्यवस्था के विकास का विश्लेषण कीजिए।

2 भारत में क्षेत्रीय आकांक्षाओं के रूप में स्वायत्तता आंदोलनों, उग्रवाद, और पृथक राज्य हेतु आंदोलनों पर चर्चा कीजिए।

सत्रीय कार्य – II

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 250 शब्दों में दीजिए।
(3 × 10 = 30 अंक)

3. जाति, वर्ग, लिंग और जनजातियों के संदर्भ में मतदान व्यवहार के सामाजिक निर्धारकों की व्याख्या कीजिए।

4. भारतीय राजनीति में धर्मनिरपेक्षता और सांप्रदायिकता के प्रभाव पर चर्चा कीजिए।

5. जातीय संगठनों और राजनीतिक संरचनाओं के बीच संबंध का परीक्षण कीजिए।

सत्रीय कार्य – III

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर लगभग 100 शब्दों में दीजिए।
(5 × 6 = 30 अंक)

6. दलीय व्यवस्था से क्या तात्पर्य है?

7. नृजातीयता (Ethnicity) और भाषा के राजनीतिक महत्व की व्याख्या कीजिए।

8. सकारात्मक कार्यवाही (Affirmative action) क्या है?

9. आरक्षण पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

10. राजनीतिक प्रक्रिया के संदर्भ में विकास से क्या तात्पर्य है?

1 भारत में राजनीतिक दलों और दलीय व्यवस्था के विकास का विश्लेषण कीजिए।

उत्तर

भारतीय लोकतंत्र में राजनीतिक दल नागरिकों और राज्य के बीच महत्वपूर्ण कड़ी हैं। वे विभिन्न हितों और विचारों को संगठित करते हैं, चुनाव में प्रत्याशी उतारते हैं, सरकार बनाते हैं और उसकी जवाबदेही तय करने में भूमिका निभाते हैं। स्वतंत्र भारत की दलीय व्यवस्था का विकास केवल दलों की संख्या बदलने की कहानी नहीं है; इसमें सामाजिक आधार, वैचारिक प्रतिस्पर्धा, संघवाद, नेतृत्व, चुनावी संस्थाएँ तथा मतदाताओं की नई आकांक्षाएँ शामिल हैं।

राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत और कांग्रेस का प्रभुत्व

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना सन् 1885 में हुई और स्वाधीनता आंदोलन के दौरान वह विभिन्न वर्गों, धर्मों, जातियों तथा क्षेत्रों का व्यापक राजनीतिक मंच बनी। स्वतंत्रता के बाद कांग्रेस को संगठनात्मक विस्तार, लोकप्रिय नेतृत्व और स्वतंत्रता संघर्ष की वैधता का लाभ मिला। सन् 1952, सन् 1957 और सन् 1962 के आम चुनावों में उसके लोकसभा बहुमत ने प्रथम चरण को आकार दिया। राजनीतिशास्त्री रजनी कोठारी ने इस व्यवस्था की व्याख्या 'कांग्रेस प्रणाली' के रूप में की, जिसमें कांग्रेस प्रमुख केंद्र थी, जबकि समाजवादी, साम्यवादी, जनसंघ और अन्य दल विपक्ष तथा दबाव-समूह के रूप में सक्रिय थे। यह एक-दलीय तानाशाही नहीं थी, क्योंकि नियमित प्रतिस्पर्धी चुनाव, संसदीय विपक्ष और राज्यों में राजनीतिक परिवर्तन संभव थे।

कांग्रेस के भीतर भी किसान, उद्योगपति, स्थानीय प्रभावशाली समुदाय, वाम और मध्यमार्गी विचारधाराओं का मेल था। दल के अंदर विभिन्न गुटों में होने वाली प्रतिस्पर्धा कभी-कभी विपक्ष की भूमिका भी निभाती थी। फिर भी प्रभुत्व के कारण सत्ता का अत्यधिक केंद्रीकरण, स्थानीय नेतृत्व पर नियंत्रण और प्रभावशाली समूहों को अधिक अवसर मिलने जैसी समस्याएँ उभरीं। केरल में सन् 1957 में साम्यवादी सरकार की चुनावी सफलता दिखाती है कि कांग्रेस का वर्चस्व सर्वव्यापी नहीं था।

कांग्रेस व्यवस्था में प्रतिस्पर्धा और पुनर्संरचना

सन् 1967 के आम चुनावों में कांग्रेस के समर्थन में गिरावट आई और कई राज्यों में गैर-कांग्रेसी संयुक्त सरकारें बनीं। कृषि, कीमतों, बेरोजगारी, स्थानीय असंतोष और कांग्रेस के आंतरिक मतभेदों ने इस परिवर्तन में भूमिका निभाई। सन् 1969 में कांग्रेस का विभाजन तथा इंदिरा गांधी के व्यक्तित्व-आधारित नेतृत्व ने पार्टी की पुरानी संगठनात्मक प्रणाली को बदला। सन् 1971 के चुनाव में लोकप्रिय नारे और सामाजिक-आर्थिक कार्यक्रमों के माध्यम से कांग्रेस ने फिर मजबूत जनादेश प्राप्त किया, पर सत्ता का केंद्रीकरण भी बढ़ा। सन् 1975–77 के आपातकाल में नागरिक स्वतंत्रताओं पर प्रतिबंध और विरोधी नेताओं की गिरफ्तारी ने लोकतंत्र की संस्थागत सीमाओं पर गंभीर बहस छेड़ी।

सन् 1977 में जनता पार्टी का सत्ता में आना निर्णायक घटना थी। इससे स्पष्ट हुआ कि केंद्र में शांतिपूर्ण सत्ता-परिवर्तन संभव है और विपक्षी दल साझा लक्ष्य पर एकजुट हो सकते हैं। जनता सरकार के आंतरिक विरोधाभासों के कारण उसका प्रयोग अल्पकालिक रहा, किंतु उसने कांग्रेस के